Introduction

प्राक्कथन

समाज के विस्तृत एवम् बड़े फलक का समुचित चित्रण उपन्यासों के रचना-संसार में दृष्टिगोचर होता है। इसीलिए मेरी गहरी अभिरूचि उपन्यासों के अध्ययन की ओर रही है। उपन्यासों के विविध रूप दिखाई पड़ते हैं। इनमें आंचलिक उपन्यासों ने मुझे विशेष रूप से प्रभावित किया है। इसका कारण यह है कि, आंचलिक उपन्यास किसी अंचल-विशेष का संवेगात्मक और प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत करता है। यह सामाजिक यथार्थ का दस्तावेज होता है। अत: मैंने शोध के लिए आंचलिक उपन्यास को केन्द्र बनाया।

सर्व प्रथम १९५४ ई. में प्रकाशित उपन्यास 'मैला आंचल' के प्रथम संस्करण की भूमिका में फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने अपने उपन्यास का वैशिष्ट्य घोषित करते हुए कहा था- "यह है 'मैला आंचल' एक आंचलिक उपन्यास", इसी घोषणा के पश्चात् हिन्दी के उपन्यास जगत में आंचलिक उपन्यास के विशेष-रूप का तत्वत: प्रतिपादन आरम्भ होने लगा था। आंचलिक उपन्यासों के तत्वों की स्थापना के साथ विवादों का सिलसिला भी शुरू हुआ, विभिन्न आलोचकों के भिन्न-भिन्न मत सामने आने लगे। आंचलिकता के तत्व 'मैला आंचल' से पहले लिखे हुए उपन्यासों में भी खोजे जाने लगे। मैला आंचल से पहले लिखे गये नागार्जुन के उपन्यासों - रतिनाथ की चाची (१९४८), नई पौध (१९५३), बलचनमा (१९५२) आदि में आंचलिक तत्वों की उपस्थिति को देखते हुए उन्हें 'आंचलिक उपन्यास' की मान्यता प्रदान की गई। वस्तुत: आंचलिकता के प्रति लेखकों का आकर्षण बीसवीं सदी के विश्व-साहित्य की एक विशेषता के रूप में रेखांकित किया जा सकता है। इस काल-खण्ड के साहित्य में साम्राज्यवादी ताकतों के उपनिवेशों के टूटने और जनतांत्रिक व्यवस्था के उदय की संघर्ष-चेतना को प्रत्यक्षत: देखा जा सकता है। आंचलिक संस्कृतियों की अस्मिता स्वतंत्रता की संघर्ष-चेतना से प्रेरित होकर जागृत होने लगी, जिसके परिणाम स्वरूप साहित्य में आंचलिकता का आग्रह बढ़ने लगा।

दूसरा कारण यह भी है कि नगरीय सभ्यता के क्रमिक विकास के साथ ही मनुष्य की भावना-शून्य कृत्रिम जीवन में विश्वसनीयता और आत्मीयता की ललक तीव्रता से उत्पन्न होने लगी जिसकी पूर्ति के लिए लेखकीय कर्म आंचलिक जीवन से आ जुड़ा और लोक-संस्कृति की निर्मल संवेदनाओं के प्रति लोगों की रूचि बढ़ने लगी।

आंचलिक उपन्यास में प्रयुक्त अंचल-विशेष के प्राकृतिक परिवेश, रीति-रिवाज, रूढ़ि, अंधविश्वास, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, परम्परा-प्रथा, तीर्थ-व्रत, पर्व-त्योहार, बोली-भाषा, गीत-संगीत और नृत्य आदि का सांगोपांग चित्रण किया जाता है। जिससे उस अंचल का प्रामाणिक परिचय हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है, और जिसके अध्ययन से सामाजिक उन्नति अथवा अवनति का विश्लेषण किया जा सकता है।

प्रस्तुत 'शोध-प्रबन्ध' में प्रमुखतः दो प्रकार के उपन्यासों को सम्मिलित किया जा रहा है; प्रथम तो वे, जो आंचलिक तत्वों की प्रधानता के कारण निर्विवाद रूप से आंचलिक मान लिए गये है। जैसे- 'मैला आंचल', 'परतीः परिकथा', 'कब तक पुकारूँ', 'जंगल के फूल', 'बलचनमा' आदि; द्वितीय वे, जिनका समग्र प्रभाव आंचलिक होता है जैसे- 'ब्रहमपुत्र', 'हौलदार', 'चिट्ठीरसैन' तथा 'हिरना सांवरी' आदि। इन दूसरे प्रकार के उपन्यासों को आंचलिक मान लेने का सबसे बड़ा कारण यह है कि, आंचलिक उपन्यास एक कलाकृति होता है जिसकी सफलता-असफलता उसके द्वारा पड़ने वाले प्रभाव पर जितनी निर्भर होती है, नियमें या तत्वों पर उतनी नहीं।

आंचलिक उपन्यासों पर मुख्यतः निम्नलिखित दृष्टिकोणों से शोध-कार्य सम्पन्न हुए हैं - उद्‌भव और विकास, उपन्यास-तत्व, सांस्कृतिक, पारिवारिक, ऐतिहासिक विकास, भाषा वैज्ञानिक, शिल्प-कथ्य, आधुनिकता, जीवन-मूल्य, युगीन-चेतना, संवेदना, कौतूहल और रोमांस, नारी-चेतना, नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, समाज शास्त्रीय यथार्थवाद, भाषा, उपलब्धि और संभावना, कथा-तत्व का विकास, व्यक्ति और प्रगति-चेतना, लोकतत्व और लोक-चेतना, आंचलिक तत्व, शिल्पविधि तथा तूलनात्मक प्रभाव इत्यादि। इन शोध-विषयों द्वारा आंचलिक उपन्यासों की विवेचना इस तथ्य

का प्रमाण प्रस्तुत करती है कि, उपन्यास का यह स्वरूप अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इन विषयों में सामाजिक यथार्थ को सर्वाधिक वरीयता दी गई है सामाजिक विसंगतियाँ सामाजिक यथार्थ के चित्रण का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होती है जिनकी अभिव्यक्ति देनेवाली सबसे सशक्त विधा व्यंग्य है। हिन्दी उपन्यास को लेकर व्यंग्य-विषयक छिट-पुट कार्य हुए हैं लेकिन समग्र रूप से इस दिशा में प्रयास नहीं हुआ है। अतः आंचलिक उपन्यासों में समग्रतः व्यंग्य विषयक शोध की आवश्यकता प्रतीत हुई।

व्यंग्य की दृष्टि से किसी कृति के कथ्य और शिल्प दोनों पक्षों का विश्लेषण किया जा सकता है। चूँकि 'व्यंग्य' अभिव्यक्ति का विशेष माध्यम है, अतएव आंचलिक उपन्यासों के अध्ययन में प्रयुक्त सभी दृष्टिकोणों का सहयोग व्यंग्य-विषयक शोध-कार्य को सकता है, जिससे 'हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में व्यंग्य' विषय मुझे सर्वाधिक उपयुक्त और आवश्यक प्रतीत हुआ।

यह सर्वमान्य धारणा है कि, किसी आंचलिक उपन्यास को आंचलिक कहे जाने के लिए उस उपन्यास में एक निश्चित अंचल की सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिस्थितियों का चित्रण होना चाहिए और व्यंग्योत्पत्ति के लिए भी सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि व्यवस्थाओं में उत्पन्न विसंगतियाँ आवश्यक होती हैं। एक प्रामाणिक समाज व्यवस्था में ही, जिसे कोई आंचलिक उपन्यास प्रस्तुत करता है, व्यंग्य के उत्पन्न होने की परिस्थिति अर्थात विसंगतियों का अध्ययन प्रामाणिक रूप से किया जा सकता है। इस दृष्टि से आंचलिक उपन्यास में व्यंग्य के विस्तृत अध्ययन का महत्व किसी अन्य साहित्यिक विधा की तुलना में अधिक दृष्टिगोचर होता है क्योंकि आंचलिक उपन्यास की प्रतिबद्धता एक विशेष अंचल के समाज की मनोवृत्तियों एवम् परिस्थितियों से जुड़ी हुई होती है। इनमें उत्पन्न व्यंग्य एक विशेष तेवर लिये दिखाई पड़ते हैं, जिनमें निजी पहचान होने के साथ-साथ व्यापक प्रभाव भी होता है। आंचलिक उपन्यासों में अभिव्यक्त व्यंग्य, किसी समाज की विसंगतियों का प्रामाणिक साक्ष्य प्रस्तुत करता है। आज भी विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक एवम् धार्मिक परिस्थितियों में विषमताएँ तेजी से आ रही हैं। सांस्कृतिक और सभ्यतागत् संक्रमण-काल में ग्राम्यांचलों

में व्याप्त विकृतियों को व्यंग्य विविध रूपों में उद्‌घाटित करता रहा है।

मनुष्य की यह सर्वविदित स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि, वह अपनी अन्तरंग अभिव्यक्ति के क्षणों में निजी भाषा-उपादानों का उपयोग करके अधिकतम संतोष का अनुभव करता है। इसी प्रवृत्ति के कारण भाषा में आंचलिक तत्वों का समावेश होता है। व्यंग्य सतही स्पर्श से नहीं उत्पन्न होता, अन्तरंग पीड़ा की कौशलपूर्ण अभिव्यक्ति है यह। इसीलिए व्यंग्य में आंचलिक गुणवत्ता का पुट आ जाना स्वाभाविक है। स्वाभाविक साहित्यिक कृतित्व का आग्रह ही आंचलिक उपन्यास के रूप का प्रधान प्रेरक तत्व रहा है इन उपन्यासों के व्यंग्य स्वाभाविक भाषा के साथ अभिव्यक्त हुए दिखाई देते है। अतः इन्हें दो दृष्टियों से प्रामाणिक व्यंग्य कहा जा सकता है; पहली, इन व्यंग्यों के जन्म के लिए प्रामाणिक सामाजिक विसंगतियाँ मिलती है; दूसरी, इन व्यंग्यों में स्वाभाविक भाषा की सृष्टि हुई है।

व्यंग्य से लोक-मानस के विसंगत प्रसंगों का समुचित विरेचन होता है। सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई ने व्यंग्य के विषय में लिखा है। कि यह "विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखण्डों का पर्दाफास करता है।"[१] समाज के दोषों और क्लेशों के विरेचन का दायित्व निभाने की प्रक्रिया से व्यंग्य के विविध रूपों का निर्माण होता है। पारिवारिक क्लेशों की अभिव्यक्ति हो या राजनीतिक परिस्थितियों की, प्रत्येक प्रसंगो में यह अपनी भूमिका बनाए रहता है।

सामान्य उपन्यासों के व्यंग्य और आंचलिक उपन्यासों के व्यंग्य में अन्तर यह माना जा सकता है कि, सामान्य कथा-परिवेश पर निर्मित उपन्यास किसी विशेष अंचल के प्रति उत्तरदायी नहीं होतें। अतः उनके व्यंग्य में आंचलिक आग्रह का अभाव होता है जबकि आंचलिक उपन्यास घोषित रूप से किसी अंचल के प्रामाणिक सांस्कृतिक, सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण कर उसकी विसंगतियों को व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त करता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि,

---

१. हरिशंकर परसाई, 'सदाचार का ताबीज', पृष्ठ-८

आंचलिक उपन्यास एक प्रामाणिक समाज का संवेगात्मक विवरण प्रस्तुत करता है। इसलिए आंचलिक जन-समुदाय में उत्पन्न विसंगतियों की प्रामाणिकता भी असंदिग्ध है। चूँकि विसंगतियाँ व्यंग्य को जन्म देने वाली उर्वर भूमि है, अत: व्यंग्योत्पत्ति के लिए समाज में विभिन्न विसंगतियों का व्याप्त होना आवश्यक होता है। विसंगतियाँ भी स्वाभाविक रूप से समाज में स्वत: ही उत्पन्न होती रहती हैं। आंचलिक जन-जीवन में उत्पन्न व्यंग्य को भी प्रामाणिक माना जा सकता है।

आंचलिक उपन्यासों में प्रयुक्त व्यंग्य के माध्यम से विसंगतियों को उत्पन्न करने वाले राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवम् धार्मिक-सांस्कृतिक कारणों का गहन अध्ययन किया जा सकता है। आंचलिक उपन्यासों का व्यंग्य सामाजिक परिस्थितियों की प्रामाणिक व्याख्या करने में सहयोगी सिद्ध हो सकता है। इसी महत्वपूर्ण दृष्टिकोण से मुझे 'हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में व्यंग्य' विषयक शोध करने की प्रेरणा मिली।

प्रस्तुत 'शोध-प्रबन्ध' आंचलिक उपन्यासों की परिभूमि में व्याप्त उपन्यासकारों के व्यंग्य-कथ्यों और उनके स्थापित मूल्यों को जहाँ एक ओर स्पष्ट करता है, वहीं दूसरी ओर अपने व्यंग्य-कथ्यों द्वारा समाज की बोझिल आचार-संहिता पर वह प्रखर एवम् प्रबल प्रहार भी करता है। इस शोध-प्रबन्ध में यथासम्भव आंचलिक भाषाओं के विविध प्रयोग तथा व्यंग्य-कथ्यों के भिन्न-भिन्न रूपों को व्याख्यायित कर प्रस्तुत किया गया है।

वस्तुत: यह कहना अनुचित न होगा कि, 'व्यंग्य-विधा' ने हिन्दी साहित्य को नवीन और अति महत्वपूर्ण मोड़ प्रदान किया है, जहाँ कथ्य-विश्लेषण की अनेक संभावनाएँ प्रदीप्त हुई हैं। अपने बहुआयामी प्रभावों के कारण स्वतंत्र विधा के रूप में भी व्यंग्य को स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है तथा इसी कारण भाषिक अभिव्यंजना की संभावित क्षमताओं एवम् विभिन्न उपादानों में भी चतुर्दिक अभिवृद्धि हुई है। इस शोध-प्रबन्ध के माध्यम से आंचलिक उपन्यासों की व्यंग्य-चेतना पर प्राप्त सामग्री को सूक्ष्मता से विवेचित एवम् विश्लेषित किया गया है।

मेरा 'शोध-प्रबन्ध' मुख्यत: पाँच अध्यायों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है, जिसके प्रारम्भिक दो अध्याय आंचलिक उपन्यास और व्यंग्य के सैद्धान्तिक पक्ष की पुष्टि करते हैं तथा अन्य तीन अध्याय में प्रायोगिक पक्ष का विवेचन हैं; इन तीन अध्यायों को आंचलिक उपन्यासों से प्राप्त व्यंग्य के स्वरूपों पर निर्धारित किया गया है। इनमें क्रमश: राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक व्यंग्यों को सोदाहरण विश्लेषित किया गया है। ध्यातव्य है कि, आधुनिक अध्ययन प्रक्रिया के इन विभागों में गहरा अर्न्तसम्बन्ध है। राजनीति का स्वतंन्त्र अस्तित्व नहीं होता। वह किसी समाज के लिए समाज द्वारा संचालित व्यवस्था होती है। इसी प्रकार किसी समाज की कल्पना भी राजनीतिक एवम् धार्मिक परिस्थितियों के बिना नहीं की जा सकती। इन अध्ययन विभागों मे आर्थिक शक्ति की भूमिका महत्वपूर्ण होती है जो समूची समाज-संरचना को प्रभावित करती है। आर्थिक व्यवस्था, राजनीतिक, सामाजिक एवम् धार्मिक परिस्थितियों के उत्थान और पतन का कारण होती है। आर्थिक व्यवस्था की सर्वव्यापकता को देखते हुए इसे राजनीतिक, सामाजिक एवम् धार्मिक परिस्थितियों के साथ अनुस्यूत मान लिया गया है, और प्रयोग पक्ष के तीन अध्यायों में क्रमश: राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक व्यंग्यों का उदाहरण सहित विश्लेषण किया गया है।

प्रथम अध्याय के अन्तर्गत 'अंचल' शब्द की व्युत्पत्ति, परिभाषा (भारतीय एवम् पाश्चात्य दृष्टिकोण), लक्षण, विशेषताओं और विकास पर विस्तार से विचार करने के साथ-साथ अंचल से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं पर भी प्रकाश डाला गया है। आंचलिक परिवेश के विविध पहलुओं पर सूक्ष्मता से दृष्टिपात किया गया है और 'आंचलिकता' को सार्थकता प्रदान करने वाले तथ्यों पर भी विस्तृत विचार-विमर्श हुआ है।

द्वितीय अध्याय में 'व्यंग्य' शब्द की उत्पत्ति, परिभाषा (भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण), परम्परा, लक्षण और विशेषताओं पर विचार करते हुए उसके भेदों को स्पष्ट किया गया है। इसके साथ ही हास्य और व्यंग्य

के परस्पर सम्बन्ध और अन्तर का विश्लेषण भी प्रस्तुत किया गया है। व्यंग्य को पूर्ण रूप से स्पष्ट कर उसके विविध उपादानों का यथावसर विवेचन किया गया है।

तृतीय अध्याय में 'राजनीतिक व्यंग्य' का अभिप्राय, स्वरूप विश्लेषण और निष्कर्ष है। इस अध्याय में आंचलिक उपन्यासों में प्रयुक्त राजनीतिक व्यंग्यों का उदाहरण लेते हुए व्यंग्य के अभिप्राय और उत्प्रेरक परिस्थितियों का विश्लेषण और निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है। राजनीतिक परिस्थितियों से उत्पन्न विसंगतियों एवम् विद्रूपताओं पर उपन्यासकारों के व्यंग्य का विस्तृत विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में 'सामाजिक व्यंग्य' का तात्पर्य, स्वरूप विश्लेषण और निष्कर्ष है। इस अध्याय में आंचलिक उपन्यासों में व्यक्त सामाजिक व्यंग्यों को उत्पन्न करने वाली विसंगतियों और उसके कारण-तत्वों का अनुशीलन किया गया है और अन्त में निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

पंचम् अध्याय में 'धार्मिक व्यंग्य' का तात्पर्य, स्वरूप विश्लेषण और निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है। इसके अन्तर्गत आंचलिक उपन्यासों में चित्रित धार्मिक-सांस्कृतिक प्रसंगों में उत्पन्न विकृतियों पर किये गये व्यंग्य प्रहारों के उद्देश्य और उसके ढंग का विवेचन किया गया है और निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है। धार्मिक अनुष्ठानों एवम् अन्य धार्मिक गतिविधियों में आयातित विद्रूपताओं तथा उनके उत्प्रेरक कारणों पर किये गये तीक्ष्ण व्यंग्याक्षेपों का सोदाहरण विश्लेषण किया गया है।

उपसंहार में उपर्युक्त अध्यायान्तर्गत प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर शोध-विषय के प्रतिपादनों के विवरण और उपलब्धि का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के विवेच्य विषयों का परिचयात्मक विवरण भी दिया गया है।

कतिपय उपन्यासों, यथा- 'रतिनाथ की चाची, 'आठवीं भावर इत्यादि अप्राप्यता की स्थिति में हैं। इलाहाबाद, वाराणसी एवम् दिल्ली के पुस्तकालयों तथा संग्रहालयों एवम् प्रकाशकों के यहां भी ये पुस्तकें उपलब्ध नहीं हो सकीं। इन्हें प्राप्त करने का हर संभव प्रयत्न किया गया

किन्तु अन्ततः ये अनुपलब्ध रहे अतः इन उपन्यासों का या तो नामोल्लेख कर दिया गया है या परिचयात्मक टिप्पणियां दे दी गई है। तदर्थ हम नतमस्तक होकर क्षमा याचना करते हैं।

आभार

इस 'शोध-प्रबन्ध' के अधिकाँश सामग्री का संकलन महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय के अन्तर्गत श्रीमती 'हंसा मेहता पुस्तकालय' से किया गया है। साथ ही साहित्य अकादमी पुस्तकालय, नयी दिल्ली; केन्द्रीय पुस्तकालय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी तथा हिन्दी संग्रहालय, प्रयाग से भी सहायता प्राप्त की गई है।

इस शोध-प्रबन्ध के विषय का चयन और पल्लवन मेरे परम् आदरणीय गुरूवर डॉ. प्रताप नारायण झा (रीडर, हिन्दी विभाग, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा) की सत्प्रेरणा से फलीभूत हुआ। 'शोध-प्रबन्ध' का विषय अत्यन्त विस्तृत था और आधारभूत सामग्री की विरलता के कारण कठिन भी परन्तु उनके कुशल निर्देशन से सभी कठिनाइयाँ सरलता से दूर हो गई। उनकी सृजनात्मक प्रेरणा और मंगलमय आशीर्वचनावली ने निरन्तर मुझे सम्बल प्रदान किया है। यह शोध-प्रबन्ध उन्हीं के सौजन्यपूर्ण पथ-प्रदर्शन का व्यक्त रूप है। उनके आशीर्वाद के लिए मै हमेशा नतमस्तक रहूँगा। श्रद्धेय गुरूवर डॉ. विष्णुविराट चतुर्वेदी के प्रति भी हार्दिक कृतज्ञता-ज्ञापन किये बिना स्वंय को कृतकृत्य नहीं कर सकता। अत्यन्त व्यस्त होते हुए भी उन्होंने समय-समय पर उचित दिशा-निर्देश दिये है। साथ ही हिन्दी विभाग, महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय के अन्य प्राध्यापकों डॉ. अक्षय कुमार गोस्वामी एवम् डॉ. भगवान दास कहार के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझता हूँ; इन विद्वान प्राध्यापकों के बहुमूल्य विचार मेरा मार्ग प्रशस्त करते रहे, और मेरे परममित्र डॉ. ओमप्रकाश यादव का सहयोग फलदायी होता रहा। विशेष रूप से अपने पूज्य स्वजन डॉ. एन.एल. सिंह (रीडर, भौतिक विभाग, म.स. विश्वविद्यालय, बड़ौदा) एवम् डॉ. प्रमोद कुमार दुबे का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ जिनकी स्नेहिल उत्साहवर्द्धन से मेरे

शोध-कार्य में सक्रियता बनी रही। अपने अग्रज सूर्य प्रकाश सिंह तथा अभिन्न मित्र शंकर झा के प्रति आभार व्यक्त करना उचित समझता हूँ जिन्होंने मेरा आत्मविश्वास बढ़ाने में नियमित सहयोग बनाये रखा। उन सभी विद्वानों एवम् सृजनशील लेखकों का आत्मिक रूप से आभारी हूँ जिनका प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से शोध-प्रबन्ध की पूर्ति में सहयोग प्राप्त हुआ है। साथ ही प्रिय मित्र केतन बी. प्रजापति का भी हृदय से आभारी हूँ जिनके आत्मीय सहयोग के बिना इस शोध-प्रबन्ध का सफल मुद्रण संभव न था।

अन्त में परम् पूज्य माता-पिता के श्री चरणों की कृपा का अक्षय आशीर्वाद अनुभव करते हुए यह शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत कर रहा हूँ।

विनीत

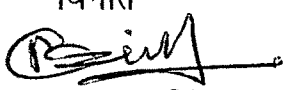

चन्द्र प्रकाश सिंह